पर्यावरण संरक्षण में हमारा योगदान

प्रकृति की तीव्रता सारे संसार के लिये विनाशकारी है, जो प्रत्येक जीवन के लिये अत्यधिक घातक हो सकता है, प्रकृति को शांत करने का उपाय शीघ्र ही जनमानस को करना होगा।

आत्मा एवं मन का सीधा सम्बन्ध धर्म से है धर्म सृष्टि को धारण करने वाला तत्व है। आत्मा एवं मन ही धर्म के प्रादुर्भाव, प्रवृत्ति एवं पोषण में कारण है। वेदों में धर्म व पर्यावरण की वैज्ञानिक व्याख्या मिलती है।

प्रारम्भिक काल में भौतिक प्रगति का आधार था आवश्यकता। धीरे-धीरे आवश्यकता का स्थान सुविधा और उपयोग ने ले लिया। वर्तमान में भोगवाद की परिभाषा मानव जीवन के स्वास्थ्य की भी सुविधा, सम्पन्नता व भोग की प्रवृत्ति के समक्ष विवश कर दिया है और वह स्वास्थ्य की परवाह न करते हुये उपभोग के लिये सतत प्रयत्नशील है। **विडम्बना यह है कि मात्र सुविधा एवं उपभोग के नाम पर जीवन एवं स्वास्थ्य के मूलभूत आवश्यक तत्वों को विकृत किया जा रहा है।**

यदि पर्यावरण से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर विचार कर उनका समाधान नहीं किया जायेगा तो भविष्य में निश्चित ही इसका परिणाम अत्यन्त भयावह होगा। **सुखी एवं स्वस्थ जीवन के लिये पर्यावरण का महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्ण स्वास्थ्य जीवन के लिये वायु, जल, काल एवं पंचमहाभूतों के गुणों में कमी होना मानव के लिये संकट, विपदा के समान है।**

युगे युगे धर्मपादः क्रमेणानेन हीयते।
गुणपादश्च भूतानामेवं लोकः प्रलीयते।।

सतयुग से लेकर आने वाले युगों में धार्मिक लोगों की कमी हुयी है, जिसके कारण पंचमहाभूतों के गुणों में भी कमी आई है और धीरे-धीरे यह स्थिति विनाशकारी बन चुकी है।

ईश्वरीय प्रकृति अपने नियम एवं सिद्धान्तों के आधार पर ही चलती है, मनुष्य को अपने जीवन की रक्षा के लिये इनका संरक्षण करना चाहिये। **प्रकृति एवं मनुष्य परस्पर एक-दूसरे के पूरक है। ईश्वर द्वारा प्राप्त प्रकृति प्रत्येक जीव के जीवन की बहुमूल्यता है, जिनके द्वारा सम्पूर्ण जीवों का पालन-पोषण होता है।**

सामान्य रूप से धर्म का सरलतम एवं अन्यतम स्वरूप है, स्वविहित कर्तव्य का परिपालन । **गीता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अग्नि पर पकाये आहार का त्याग करने वाला या सांसारिक कर्मो का त्याग करने वाला सन्यासी और योगी नहीं है। अपितु, निष्ठा पूर्वक एवं बिना इच्छा के कर्तव्य पालन करने वाला ही योगी और सन्यासी कहलाने योग्य है।**

कर्तव्य पालन का सामाजिक स्वरूप यही है कि हर स्वरूप में पर्यावरण संरक्षण में अपनी भागीदारी निश्चित की जाये। **कर्तव्य पालन से प्राणियों के हितों की रक्षा होती है, समाज में शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति का सदुपयोग होता है, जिससे सभी प्राणियों का जीवन सुख-पूर्वक निर्वाह होता है। और सभी प्राणियों की सामूहिक जीवन शक्ति पर्यावरण के तत्वों के पोषण में सहायक होती है। अहिंसा का पालन प्राणियों के जीवन को बढ़ाने में श्रेष्ठ है।** इतिहास के कई उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि **सामाजिक दुराचार, असन्तोष, द्वेष** आदि भावनाओं का प्रकृति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे प्राकृतिक आपदाओं की उत्पति होती है।

शास्त्रों ने अधर्म को पर्यावरण-प्रदुषण का मूल कारण माना है। अधर्म पर्यावरण को दो प्रकार से प्रभावित करता है, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में। प्रत्येक व्यक्ति का धार्मिक आचरण तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था का पालन करना, उस व्यवस्था में अवरोध उत्पन्न न करना एवं समाज के कल्याण का उपाय करना समाज के प्रति धर्म है। प्रकृति के नियमों का पालन, उसके नियमों में अवरोध उत्पन्न न करना एवं उसकी श्रेष्ठता के लिये उपाय करना प्रकृति के प्रति धर्म है। धर्म के तीनों घटकों के पालन में विसंगति को अधर्म कहा गया है। प्रथम एवं द्वितीय प्रकार का अधर्म पर्यावरण को परोक्ष रूप में प्रभावित करता है। जबकि प्रकृति के प्रति अधर्म प्रत्यक्ष से पर्यावरण को प्रभावित करता है।

धर्म पालन की कमी के कारण पंच महाभूतों के गुणों में कमी आती है, जिसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण में असन्तुलन एवं विकार उत्पन्न होता है। वन सम्पदाओं का संरक्षण व वृद्धि के अभाव के कारण ही ऋतुओं के निश्चित क्रम में बाधा उत्पन्न होती है जिसमें ऋतुओं के स्वाभाविक गुणों में अत्यधिक वृद्धि या ह्रासरूपी परिवर्तन देखने को मिलता है। वर्तमान में प्रकृति के नियमों की अवमानना हर प्रकार से की जा रही है। जिसके कारण देश में अनेक विध्वंसकारी परिणाम देखने को मिलते है, **केदारनाथ और नेपाल के विनाशकारी प्राकृतिक प्रकोप आज भी हमारे मानस पर भयावह स्थिति उत्पन्न करती है।** इसके मूल में पर्यावरण के प्रति हमारा असंवेदनशील कर्तव्य ही है। जिसका परिणाम आये दिन हमें बाढ़, सुखा, भूकंप, तूफान के रूप में देखना पड़ता है।

अनेक सामाजिक और प्रशासनिक संगठन पर्यावरण के प्रति जनमानस को जागरूक करने के लिये प्रयत्नशील है, परन्तु जिस रूप में प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना चाहिये, वह नहीं हो पा रहा है। इसका सीधा कारण उपयोग करने की प्रवृति ही है, यदि लोग उपयोग को आवश्यकता में परिवर्तन व साथ ही पुनः प्राकृतिक वनस्पति वृद्धि के लिये नियमित क्रियाये करे तो, ऐसी विनाशकारी घटनाओं को कम किया जा सकता है। साथ ही व्यक्ति को धार्मिक होना होगा। क्योंकि जब तक व्यक्ति धार्मिक नहीं होगा सकारात्मक ऊर्जा का विकास और संरक्षण नहीं हो पायेगा। **वर्तमान की घटनाओं के मूल में धर्म का विकृत स्वरूप है। जिसके कारण नकारात्मक ऊर्जा का सृजन हुआ, परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण पृथ्वी के तापमान में इतनी तीव्र गति से वृद्धि हुयी, सूर्य से प्रकाश नहीं आग के गोले बरस रहे है, जिसके जिम्मेदार हम ही है।** इस हेतु हर वर्ष प्रत्येक व्यक्ति एक पौधे की वृद्धि का भाव आत्मसात् करे और उन पौधों को निरन्तर विशाल वृक्ष में परिवर्तन हेतु संकलित रहे तो निश्चिन्त रूप से पर्यावरण का संतुलन श्रेष्ठमय बन सकेगा। और इसे धर्म स्वरूप कर्तव्य मानते हुये करना होगा।

निधि श्रीमाली